P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-2* (Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

वैशेषिक दर्शन में 'द्रव्य' मीमांसा

प्रवेश मिश्र
रीडर,
संस्कृत विभाग,
बी०आर०डी०बी०डी० स्नाकोत्तर महाविद्यालय,
आश्रम बरहज, देवरिया,
उ०प्र०, भारत

राम बहाल
शोध छात्र
संस्कृत विभाग,
बी०आर०डी०बी०डी० स्नाकोत्तर महाविद्यालय,
आश्रम बरहज, देवरिया,
उ०प्र०, भारत

सारांश

वैशेषिक द"र्ान में कुल सात पदार्थ हैं। इनमें से 'द्रव्य' नामक पदार्थ प्रथम है। द्रव्य के नौ भेद होते है– पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आका"ा, काल, दिक्, आत्मा और मन। इनमें से पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आका"ा 'पंचमहाभूत' है।

मुख्य शब्द : मीमांसा, वै"ोषिक द"र्ान, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, पंचमहाभूत, वि"ोष, समवाय और अभाव।

प्रस्तावना

सामान्यतः लोक व्यवहार में 'द्रव्य' पद का प्रयोग किसी वस्तु, उपकरण धन आदि के अर्थ में किया जाता है किन्तु वै"ोषिक द"र्ान में यह पद एक वि"िाष्ट पदार्थ का नाम है तथा उसी को द्योतित करता है।

वै"ोषिक द"र्ान द्वारा प्रतिपादित सात पदार्थों में सर्वप्रथम एवं सर्वप्रधान पदार्थ द्रव्य ही है। श्रीधराचार्य ने भी न्यायकन्दली में कहा है–

''आदौ द्रव्यस्योद्दे"ाः सर्वाश्रयत्वेन प्राधान्यत्वात्''[1]

'द्रव्य' ही वह पदार्थ है जिसकी स्थापना एवं सिद्धि के द्वारा वै"ोषिक द"र्ान सभी अध्यात्मवादी द"र्ान–सम्प्रदायों के विरूद्ध अपने वाह्यार्थवादी सिद्धान्त को स्थिर किया है। वै"ोषिक द"र्ान ने ब्रह्माण्ड में अनेक वस्तुतः सत् स्वतन्त्र तत्त्वों की सत्ता स्वीकार किया है जिन्हें उसने 'द्रव्य' नाम दिया है।

आचार्य प्र"ास्तपाद ने द्रव्य का लक्षण करते हुए लिखा है–

''द्रव्यत्त्वजातिमत्त्व द्रव्यत्त्वम्''।[2]

अर्थात जो द्रव्यत्त्व जाति से युक्त है वह द्रव्य है।

वस्तुतः 'द्रव्यत्व' जाति ही द्रव्य का लक्षण है। यह द्रव्यत्व जाति कहाँ रहती है? इसको समझाने के लिए कर्म का वि"ोषतः गुण का सहारा लिया जाता है। विभिन्न व्यक्तियों को किसी एक रूप से समझाने के लिए उन सभी व्यक्तियों में किसी सादृ"य की आव"यकता होती है परस्पर भिन्न होते हुए भी सभी मनुष्यों में कुछ आन्तर और वाह्य सादृ"य भी हैं जिनके चलते सभी मनुष्यों में 'यह मनुष्य है' इस एक तरह का व्यवहार होता है। इस प्रकार जिन सभी द्रव्यों में 'यह द्रव्य है' इस प्रकार का व्यवहार होता है उन सभी द्रव्यों में कोई सादृ"य अव"य रहता है। इस प्रकार के सादृ"य के लिए आचार्यो ने 'संयोग' और 'विभाग' नामक गुणों को बतलाया है। यह सभी द्रव्यों में समान रूप से रहने वाला गुण है। अतः सभी द्रव्य 'संयोग' या 'विभाग' के समवायिकारण है। 'संयोग' और 'विभाग' का समवायिकारण होना या समवायिकारणत्व नाम का धर्म ही द्रव्यत्व जाति को बतलाता है।

सूत्रकार कणाद ने 'द्रव्य' को लक्षित करते हुए कहा है कि 'द्रव्य' वह है जिसमें गुण व कर्म रहते हैं तथा जो समवायिकारण है–

''क्रिया–गुणवत् समवायिकारणमितिद्रव्यम्''[3]

द्रव्य गुण और कर्म का अधिष्ठान है और अपने कार्यों का उपादानकारण है। द्रव्य गुण और कर्म का आधार है। द्रव्य के बिना गुण और कर्म की कल्पना भी असम्भव है। गुण और कर्म द्रव्य में हो समवेत होते हैं। उनका स्वतन्त्र अस्तित्त्व नहीं सोचा जा सकता है। जिस सत्ता में गुण और कर्म समवेत रहते हैं। उसके आधार को ही द्रव्य कहा जाता है।

यद्यपि गुण और कर्म द्रव्य में समवेत रहते हैं फिर भी गुण और कर्म द्रव्य से भिन्न माने जाते हैं। गुण और कर्म गणों से हीन हैं। उन्हें गुणवान नहीं कहा जा सकता। द्रव्य इसके विपरीत गणों से मुक्त हैं। इस प्रकार द्रव्य को गुणवान कहना प्रमाण–संगत है। अतः द्रव्य गुण या कर्म से भिन्न होते हुए भी उनका आधार है।

द्रव्य की उक्त परिभाषा से यह भी स्पष्ट है कि द्रव्य, गुण और कर्म का आधार होने के अतिरिक्त अपने कार्यों का 'समवायिकारण' है। मिट्टी से घड़ा

निर्मित होता है। इसीलिए मिट्टी का घड़े का समवायिकारण कहा जाता है। इसी प्रकार द्रव्य भी अपने कार्यों का उपादानकारण है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि द्रव्य के अभाव में गुण, कर्म एवं सामान्य आदि की सत्ता होना असम्भव है।

वै"ोषिक द"र्ान कुल नौ द्रव्यों को मानता है– 1–पृथिवी, 2–जल, 3–तेज, 4–वायु, 5–आका"ा, 6–काल, 7–दिक्, 8–आत्मा और 9–मन।

सूत्रकार के अनुसार–

''पृथिव्यपस्तेजो वायुराका"ां कालो।
दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।।'[4]

आचार्य प्र"ास्तपाद ने भी द्रव्य के नौ भेद माने हैं–

''तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाका"ाकालदिगात्म–
मनांसि सामान्य वि"ोषसंज्ञयोक्तानि नवैवति
तद्व्यतिरेकेणान्यस्य संज्ञानभिधानात्।।[5]

नौ प्रकार के द्रव्यों में से सर्वप्रथम 'पृथिवी' का लक्षण करते हुए सूत्रकार कणाद ने लिखा है–

''रूपरसगन्धस्प"ावती पृथिवी''[6]

अर्थात रूप, रस, गन्ध तथा स्प"ार्ा इन चारों गुणों वाली पृथ्वीहै।

आचार्य प्र"ास्तपाद ने भी अपने ग्रन्थ 'प्र"ास्तपादभाष्य' में 'पृथिवी' का लक्षण करते हुए कहा है–

''पृथिवीत्वाभिसम्बन्धात् पृथिवी''[7]

अर्थात 'पृथिवीत्व' रूप जाति वि"ोष के समवाय सम्बन्ध स सम्बद्ध पदार्थ 'पृथिवी' नामक द्रव्य है।

इस 'पृथिवी' में रूप, रस, गन्ध, स्प"ार्ा, संख्या परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व, द्रवत्व और संस्कार– ये चतुर्द"ा गुण पाए जाते हैं।

पृथ्वीमें सात प्रकार का रूप होता है– शुक्ल नील, पीत, रक्त, हरित, चित्र व कपि"ा। यद्यपि रूप तेजस आदि में भी है तथापि यह सात प्रकार का रूप तो केवल पृथ्वीमें ही होता है। पृथ्वीमें छः प्रकार के रस पाए जाते हैं – मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त।

पृथ्वीमें दो प्रकार की गन्ध पायी जाती है – सुरभि तथा असुरभि। सुरभि का अर्थ है सुगन्ध और असुरभि का अर्थ है दुर्गन्ध।

पृथ्वी का स्प"ार्ा तेज संयोगजन्य पाकज और अनुष्णा"ाीत होता है। पृथ्वी में नैमित्तिक द्रवत्व होता है। अर्थात वह तेज के संयोग से उत्पन्न होता है। वेग तथा स्थिति स्थापक– ये दो प्रकार के संस्कार पृथ्वी में उपलब्ध होते हैं।

पृथ्वीके दो प्रकार के भेद माने गये हैं– नित्य और अनित्य। नित्य का अर्थ है जो त्रिकाल सत् तथा कारणहीन हो। पृथ्वीका परमाणु भी सर्वदा सत् है अतः कारणहीन है इसीलिए नित्य माना जाता है, जैसा कि सूत्रकार ने कहा है–

''सदकारणवन्नित्यम्''[8]

परमाणु का तात्पर्य है परमत्व से युक्त अणु अर्थात इससे छोटा और कुछ न हो। परमाणु निरवय है क्योंकि ये अवयव युक्त होंगे तो सबसे छोटे नहीं हो सकते।

अनित्य पृथ्वीवह है जिसका निर्माण परमाणुद्वय–संयोग आदि से होता है। यह तीन प्रकार की होती है– शरीर, इन्द्रिय और विषय। हम लोगों का शरीर पार्थिव है। पृथ्वी से बनी इन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय है जो पृथ्वी के वि"ोष गुण गन्ध को ग्रहण करती है। इसका स्थान नासिका का अग्रभाग है जहाँ पर रहती है। मिट्टी, पाषाण आदि पृथ्वीके विषय रूप हैं।

पार्थिव शरीर के दो भेद बतलाए गये हैं– योनिज और अयोनिज। वीर्य और रक्त के मिलन से उत्पन्न शरीर 'योनिज' कहलाता है। अयोनिज शरीर वह है जो शुक्र"ाोणित की अपेक्षा न कर धर्म वि"ोष के सम्बन्ध से पार्थिव परमाणुओं से ही बनता है। देवर्षियों का शरीर अयोनिज है।

योनिज शरीर के दो भेद माने गये हैं– जरायुज और अण्डज। मनुष्य, प"ा, मृगादि जरायुज की श्रेणी में तथा पक्षी, सरीसृप आदि अण्डज की श्रेणी में आते हैं।

जल

क्रमप्राप्त 'जल' का लक्षण करते हुए महर्षि कणाद कहते हैं–

''रूपरसस्प"ावत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः''[9] अर्थात रूप, रस, स्प"ार्ा, द्रवत्व तथा स्नेह गुणों से युक्त द्रव्य जल है।

आचार्य प्र"ास्तपाद के अनुसार–

''अप्त्वाभिसम्बन्धादापः''[10]

अर्थात 'जलत्व' रूप जाति वि"ोष के साथ समवाय–सम्बन्ध से सम्बद्ध 'जल' नामक द्रव्य होता है।

आचार्य प्र"ास्तपाद के अनुसार जल में रूप, रस, स्प"ार्ा, द्रवत्व, स्नेह, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व और संस्कार– ये चौदह गुण पाए जाते हैं।

''"ाुक्लमेव रूपमपाम्'' अर्थात जल में शुक्ल रूप की प्रतीति होती है। मधुर रस जल में पाया जाता है। जल का स्प"ार्ा शीत माना गया है। प्र"ास्तपाद ने अभास्वर"ाुक्ल रूप जल का स्वाभाविक वर्ण माना है।

पृथिवी के समान जल के भी नित्य और अनित्य दो रूप हैं। नित्य परमाणुरूप है तथा अनित्य स्थूलरूप है।

कार्यरूप जल के तीन प्रकार है– शरीर, इन्द्रिय तथा विषय। किन्तु जलीय शरीर केवल अयोनिज ही होते हैं जो वरूणलोक में प्रसिद्ध है। जलीय इन्द्रिय रसना है जो खट्टे, मीठे नमकीन आदि सभी प्रकार के रस का ग्रहण करती है। यह जिह्वा के अग्रभाग पर रहती है परन्तु स्वयं जिहवा नहीं बल्कि उससे भिन्न है। सरित् समुद्र इत्यादि जल के विषय हैं।

तेज

'तेज' नामक द्रव्य को परिभाषित करते हुए सूत्रकार कहते हैं–

''तजोरूपस्प"ावत्''[11]

अर्थात जिस द्रव्य में शुक्लभास्वर रूप और ऊष्ण स्प"ार्ा हो वहीं तेज है।

आचार्य प्र"ास्तपाद ने 'तेज' को परिभाषित करते हुए लिखा है–

''तेजस्त्वाभिसम्बन्धात् तेजः''[12]

अर्थात 'तेजस्त्व' जाति के साथ साक्षात् समवाय–सम्बन्ध से सम्बद्ध द्रव्य 'तेजस' कहलाता है। यह तेज नामक द्रव्य रूप, स्प"ार्ा, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व,

संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व तथा संस्कार (=वेग) से युक्त रहता है।

पृथ्वी के समान तेज के भी परमाणुरूप तथा स्थूलरूप से दो भेद होते हैं। परमाणुरूप तेज को नित्य और स्थूलरूप तेज को अनित्य कहा जाता है।

स्थूलरूप तेज के तीन भेद हैं– शरीर, इन्द्रिय और विषय। 'तैजस शरीर' केवल अयोनिज होता है क्योंकि शुक्र–"ोणितादि का सम्बन्ध केवल पृथ्वीसे हैं। इसकी प्रसिद्धि 'आदित्यलोक' में है। 'तैजस इन्द्रिय' चक्षु है क्योंकि चक्षु के द्वारा ही रूप आदि गुणों में से केवल रूप का ही ज्ञान होता है अन्य गुणों का नहीं।

आचार्य प्र"ास्तपाद ने विषयरूप में तेजस् द्रव्य के चार भेद बतलाए हैं– भौम, दिव्य, उदर्य तथा आकरज।

''भौमं दिव्यम् उदर्यमाकरजं च''[13]

भौम– इसकी उत्पत्ति के आश्रय के रूप में काष्ठ तथा तृण आदि लिए जाते हैं। इसका स्वभाव 'ऊर्ध्वज्वलन' है।

दिव्य– आदित्यादि तेज को दिव्य तेज की संज्ञा दी गई है।

उदर्य– उदर में पाचन आदि क्रिया को सम्पन्न कराने वाले तेज को उदर्य तेज कहते हैं।

आकरज– खान से उत्पन्न तेज को आकरज तेज कहते हैं। जैसे– सोना, चाँदी, ताँबा आदि।

वायु

सूत्रकार कणाद 'वायु' का लक्षण करते हुए कहते हैं–

''स्प"ार्वान् वायुः''[14]

आचार्य प्र"ास्तपाद ने 'वायु' का लक्षण इस प्रकार बतलाया है–

''वायुत्वाभिसम्बन्धाद् वायुः''[15]

यह वायु भी नित्य और अनित्य के भेद से दो प्रकार का है– परमाणु रूप वायु नित्य और स्थूल रूप वायु अनित्य।

सूत्रकार कणाद ने स्थूलरूप वायु के तीन भेद माने हैं परन्तु प्र"ास्तपाद ने 'प्राण' नामक एक अतिरिक्त 'वायु' को जोड़कर वायु के कुल चार भेद माने हैं– शरीर, इन्द्रिय, विषय और प्राण।

वायवीय शरीर केवल अन्तरिक्ष में पाए जाते हैं। वायुवीय इन्द्रिय त्वगिन्दिय है तथा यह सम्पूर्ण शरीर में निवास करती है। वायु का विषय वृक्षादि के कम्पन्न का हेतु माना गया है।

आचार्य प्र"ास्तपाद ने 'प्राण' वायु का लक्षण करते हुए कहते है–

''प्राणोऽन्तः "ारीरे रसमलधातूनां प्रेरणादिहेतुकः''[16]

वस्तुतः यह 'प्राणवायु' एक ही है किन्तु उपाधि भेद के कारण इसके पाँच भेद बतलाए गये हैं– प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान।

पृथिवी, जल, तेज तथा वायु– ये चारों द्रव्य नित्य और अनित्य दोनों रूपों में होते हैं किन्तु आका"ा काल दिक् आत्मा और मन– ये पाँच द्रव्य केवल नित्य रूप में होते हैं। इस कारण ये पाँचों द्रव्य नित्य द्रव्य कहे जाते हैं।

?

आकाश

वै"ोषिक द"ार्न में आका"ा को शब्द गुण का आश्रय या समवायिकारण द्रव्य माना गया है। अतः तदनुसार ही आका"ा का लक्षण करते हुए सूत्रकार ने कहा है–

''गुणकम् द्रव्यमाका"ाः''[17]

स्वयं सूत्रकार ने परिशेषानुमान प्रक्रिया से यह सिद्ध किया है कि शब्द गुण अन्य किसी द्रव्य में नहीं रह सकता, अतः उसके आश्रय रूप में आका"ा को द्रव्य मानना ही पड़ता है। प्र"ास्तपाद ने भी सूत्रकार का समर्थन करते हुए लिखा है–

''परिशेषाद गुणो भूत्वा आकाशस्याधिगमे लिंगम्

वै"ोषिक द"ार्न में आका"ा महाभूत होते हुए भी पृथिवी, जल, तेज और वायु महाभूतों से भिन्न है। आका"ा इन महाभूतों से भिन्न अपारमाणविक और विभु है। इससे कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती जबकि अन्य भूतों के परमाणुओं से स्थूल वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं। यह सृष्ट जगत का आधारभ्त सर्वव्यापी पदार्थ है। यह भौतिक द्रव्य है एवं शब्द इसका गुण है। यह शब्द का समवायिकारण है। यह एक नित्य, निरवयव, निष्क्रिय एवं अपारमाणविक है। आका"ा का ज्ञान अनुमान से होता है प्रत्यक्ष से नहीं क्योंकि इसमें रूप, रस, गन्ध, स्प"ार्ा गुण नहीं है। यह अन्य चारों भूतो के परमाणुओं से संयुक्त होकर सृष्टि की रचना करने का माध्यम प्रदान करता है। यह सम्पूर्ण दे"ा को व्याप्त करता है किन्तु स्वयं दे"ा से भिन्न हैं।

काल

सूत्रकार कणाद 'काल' की परिभाषा देते हुए लिखते हैं –

''नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणं कालख्येति''[18]

भाष्यकार प्र"ास्तपाद के अनुसार–

''कालः परापरव्यतिकरयौगपद्यायौगपद्यः चिरक्षिप्र प्रत्ययलिंगम्।

तेषां विषयेषु पूर्वप्रत्ययविलक्षणा–

नामुत्पत्तावन्यनिमित्ताभावाद्–यदत्र निमित्तं स कालः''[19]

भूत, भविष्य, वर्तमान आदि के व्यवहार के कारण को 'काल' कहते हैं। यह काल सम्पूर्ण जगत का आधार है क्योंकि यह समस्त जन्य पदार्थों की उत्पत्ति के प्रति निमित्तकारण है।

काल वस्तुतः एक ही है; अतीत, भविष्य तथा वर्तमान सभी काल के औपाधिक भेद हैं। सभी मूर्तद्रव्यों का संयोगी होने के कारण यह विभु है। यह काल सर्वत्र व्याप्त है। इसका कभी ना"ा नहीं हाता।

दिक्

'दिक्' की सिद्धि में सूत्रकार कहते हैं–

''इत इदमिति यतस्तद्दिश्य लिंगम्''[20]

आचार्य प्र"ास्तपाद के अनुसार–

''दिक् पूर्वापरादि प्रत्यय लिंगम्।''[21]

'इदं दूरम' इदगन्तिकम् इस बुद्धि का असाधारण कारण दिक् नामक द्रव्य है। परत्व और अपरत्व के द्वारा दिक् का अनुमान किया जाता है। इस परत्वापरत्व का ज्ञान जिस असाधारण कारण से होता है उसे 'दिक्' कहते है।

दिक् स्वरूपः एक है लेकिन आदित्य संयोग आदि उपाधियों के भेद से विभिन्न प्रकार की प्राची प्रतीची आदि संज्ञाओं से व्यवहृत होती है।

प्र"ास्तपाद भाष्य में दिक् के 10 औपाधिक भेद माने गये हैं– ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋति, वारूणी, वायत्या, कौवेरी, ऐ"ाानी, ब्राह्मी और नागी।

आत्मा

''आत्मत्वाभिसम्बन्धाद् आत्मा''[22]– आत्मत्व जाति के समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध होने से आत्मा नामक द्रव्य सिद्ध होता है। आत्मा के दो रूप हैं– परमात्मा तथा जीवात्मा। ज्ञान के आश्रय को आत्मा कहते हैं– 'ज्ञानाधिकरणमात्मा'[23] परमात्मा ई"वर एवं सर्वज्ञ है तथा एक है। वह सुख दुःख के भोग से रहित है। ''अहंसुखिनोऽस्मि अहंदुखितोऽस्मि, द्वेषवान् अस्मि'' इस प्रकार ज्ञानादि गुणों के सम्बन्ध से आत्मा का मानस् प्रत्यक्ष होता है। यह नित्य एवं विभु है। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न एवं ज्ञान इसके गुण हैं।

जीवात्माएँ अनित्य एवं शरीरभेद से अनन्त हैं। जीव का परिमाण भी विभु है क्योंकि उसे अणु या मध्यपरिणाम मानने पर अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है। जीवात्मा के अन्य गुण हैं– सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, भावना, धर्म और अधर्म। उसके ये गुण भी आगन्तुक हैं।

मन

प्र"ास्तपाद के अनुसार 'मनस्त्व' जाति से युक्त 'मन' नामक द्रव्य होता है– ''मनस्त्वयोगान्मनः''[24]

सुख–दुःखादि प्राप्ति के साधनभूत इन्द्रिय को मन कहते हैं। वह प्रत्येक आत्मा में भिन्न–भिन्न रहने से अनन्त परमाणु रूप तथा नित्य है। मानस् प्रत्यक्ष–प्रमाणगम्य नहीं है। सूत्रकार अनुमान–प्रमाण के निर्दे"ा के लिए सूत्र लिखते हैं–

''आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावा"च मनसो लिंगम्''[25]

'मन' एक आन्तरिक इन्द्रिय है जिसके कारण सुख, दुःख ज्ञान आदि की उत्पत्ति होती है। यह अणुरूप है। यह ज्ञान का साधनमात्र होने से अन्य इन्द्रियों की तरह जड़ है। मनस् के द्वारा ही आत्मा का इन्द्रिय एवं शरीर से सम्बन्ध स्थापित होता है। इसलिए वै"ोषिक मनस् को सक्रिय मानता है। वै"ोषिक द"ार्न में अयुगपत् ज्ञान का कारण भी 'मनस्' को माना गया है। यह गुणहीन और अभौतिक है।

वै"ोषिक द"ार्न की 'द्रव्यमोमांसा' दोषपूर्ण है। द्रव्य, गुण और कर्म का आश्रय होने के कारण गुण और कर्म की अपेक्षा रखता है। अतः उसका भी स्वतन्त्र पदार्थत्व प्रभावित होता है। वह द्रव्य के 'नौ' भेद मानता है। किन्तु वह इन द्रव्यों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास नहीं करता है। वह एक ओर सम्बद्धता को आनुभविक जगत का प्रधान लक्षण मानता है। परन्तु दूसरी ओर असम्बद्ध परमाणुओं तथा आत्माओं को वैज्ञानिक पदार्थ मानकर सब प्रकार के सम्बन्धों को वाह्य तथा स्वच्छन्द बना देता है। यदि यह सम्बन्धों की यथार्थता के अपने सिद्धान्त के प्रति दृढ़ रहना चाहता है तो उसे नित्य अपरिवर्तन"ाील द्रव्यों की अपनी अवधारणा त्यागना पड़ेगा और सम्बद्धता को भी यथार्थ मानना होगा, किन्तु यथार्थ सम्बद्धता सम्बद्ध तत्त्वों की नितान्त स्वतन्त्रता के साथ संगति नहीं रखती।

'आत्मा' को भौतिक द्रव्यों के समान द्रव्य मानना और ज्ञान को उसका आगन्तुक गुण स्वीकार करना अत्यन्त दोषपूर्ण तथा हेय कल्पना है। यह आत्मा का भौतिक द्रव्य के धरातल पर उतार देना है और उसे ज्ञेय और विषय बना देना है। आत्मा स्वरूपतः अचेतन द्रव्य है और विषयों के सम्पर्क में आने से चेतन हो जाता है। चार्वाक मत को छोड़कर जो आत्मा को जीवित शरीर से भिन्न तत्त्व नहीं मानता तथा चैतन्य को महाभूतजन्य स्वीकार करता है, वै"ोषिक मत की आत्मद्रव्यकल्पना भारतीय द"ार्न में आत्मा के स्वरूप की निकृष्टतम कल्पना है। हीनयान बौद्धमत ने भी जिसने आत्मा को क्षणिक विज्ञान प्रवाह मात्र माना है, स्वप्रका"ा ज्ञान के स्पन्दन को स्वीकार किया है।

अध्ययन का उद्देश्य

'द्रव्य' पदार्थ और उसके भेदों की आलोचनात्मक समीक्षा करना।

निष्कर्ष

अतः हम कह सकते हैं कि यद्यपि अध्यात्मवादी, स"ायवादी और क्षणभंगवादी– सभी प्रतिद्वन्द्वी दा"ार्निकों ने वै"ोषिक की द्रव्य–परिकल्पना का तीक्ष्ण विरोध किया है तथापि उन सबके आक्षेपों का युक्तिपूर्वक समाधान करके वै"ोषिक द"ार्न ने अपने वाह्यार्थवाद की सुदृढ़ स्थापना की है तथा यह सिद्ध कर दिया है कि द्रव्य को मानना न केवल तार्किक दृष्टि से अनिवार्य एवं संगत है अपितु वस्तुसत्ता के बौद्धिक वि"लेषण हेतु भी द्रव्य की वाह्य स्वतन्त्र स्थिति को स्वीकार करना ही पड़ता है। अतः सिद्ध होता है कि द्रव्य एक सत् स्वतन्त्र पदार्थ है जिसमें आश्रित होकर ही गुण व कर्म रहते हैं तथा जो कार्यमात्र का समवायिकारण है एवं सभी पदार्थों में न केवल संख्याक्रम की दृष्टि से बल्कि महत्त्व की दृष्टि से भी प्रथम है।

पाद टिप्पणी

1. *न्याय कन्दली – श्रीधराचार्य*
2. *प्र"ास्तपादभाष्य टीका–आचार्य व्युण्डिराज*
3. *वै"ोषिक सूत्र – 1/1/15*
4. *वै०सू० 1/1/5*
5. *प्र०पा० भाष्य–पृ० 3*
6. *वै०सू० 2/1/1*
7. *प्र०पा०भा० पृ० 15*
8. *वै०सू० 4/1/1*
9. *वै०सू० 2/1/2*
10. *प्र०पा०भा०– पृ० 34(श्रीनिवास शास्त्री टीका)*
11. *वै०सू० 2/1/3*
12. *प्र०पा०भाष्य पृ० 22*
13. *प्र०पा०भा० पृ० 23*
14. *वै०सू० 2/1/4*
15. *प्र०पा०भा०पृ० 39 (श्री निवास शास्त्री टीका)*
16. *प्र०पा०भा०पृ० 29*
17. *वै०सू० 2/1/25*
18. *वै०सू० 2/2/9*
19. *प्र०पा०भा०पृ० 4*
20. *वै०सू० 2/2/10*
21. *प्र०पा०भा० पृ० 45*
22. *प्र०पा०भा० पृ० 48*
23. *तर्क संग्रह पृ० 43*
24. *प्र०पा०भा०पृ० 56*
25. *वै०सू० 3/2/1*